

पेपर नं. 306 तुलसीदास की समन्वय-भावना

प्रस्तुत कर्ता: डॉ. करसन रावत

समन्वय भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है, समय-समय पर इस देश में कितनी ही संस्कृतियों का आगमन और आविर्भाव हुआ। परन्तु वे घुल मिलकर एक हो गईं। समन्वय को आधार बनाने वाले लोकनायक तुलसी ने अपने समय की जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और 'रामचरितमानस' के रूप में समन्वय का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया।

तुलसी सही अर्थों में सच्चे सूक्ष्मद्रष्टा थे और उन्होंने बाल्यकाल से ही जीवन की विषम स्थितियों को देखा और भोगा था इसलिये वह व्यक्तिगत स्तर पर वैषम्य की पीड़ा से भली-भाँति परिचित थे। उनकी अन्तर्भेदी दृष्टि समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, सम्प्रदाय और यहाँ तक कि साहित्य में व्याप्त वैषम्य, असामनता, अलगाव, विछिन्नता, द्वेष और स्वार्थपरता की जड़ों को गहराई से नाप चुकी थी और उनके भीतर छिपी एक सर्जक की संवेदनशीलता यह भाँप चुकी थी कि वैषम्य और विछिन्नता के उस युग में लोकमंगल केवल सामंजस्य और समन्वय के लेप से ही संभव था। समन्वय से ही उन गहरी खाइयों को पाटा जा सकता था जो मनुष्य को मनुष्य से अलग, तुच्छ और अस्पृश्य बना रही थी। समन्वय से ही राजनीति को समदर्शी और शासन को लोक कल्याणकारी बनाया जा सकता था। फलतः तुलसी राम-भक्ति की नौका के सहारे समन्वय का संदेश देने निकल पड़े। लेकिन उनके संबंध में यह ध्यान रहे कि वह समन्वय के कवि हैं, समझौते के नहीं।

'डॉ. दुर्गाप्रसाद' भी यही मानते हैं "तुलसी ने एक हद तक समन्वय का मार्ग अपनाया है, लेकिन 'समन्वय'का ही 'समझौते' का नहीं। उन्हें जहाँ कहीं और जिस किसी भी रूप में लोक-जीवन का अमंगल करने वाली प्रवृत्ति दिखाई दी है, उसका उन्होंने डटकर विरोध भी किया है, वहाँ वह थोड़ा भी नहीं चूके हैं।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी तुलसी को लोकनायक की संज्ञा देते हैं- इसी समनवय की विशेषता के कारण इसलिये वह तुलसी के काव्य में समनवय की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

"लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएं, जातियाँ, आचार, निष्ठा और विचार पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय है। रामचरितमानस शुरु से अंत तक समन्वय-काव्य है।"

तुलसीदास एक ऐसे मनीषी, चिंतक, भक्त और जन कवि हैं, जिन्होंने अपने राम की पूंजी के बल पर तत्कालीन परिवेशगत समस्याओं का निराकरण किया। जैसे तुलसीयुगीन समाज में जाति-पाँति और अस्पृश्यता का बोलबाला था। उच्च वर्ण के व्यक्ति निम्न-वर्ण के व्यक्तियों को हेय दृष्टि से देखते थे। शूद्र वर्ण के लोग सभी प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक यहाँ तक कि शैक्षिक अधिकारों से भी वंचित थे। ऐसे में तुलसी राम और उनकी भक्ति के द्वारा उन तमाम सामाजिक विषमताओं को दूर कर सबके लिये एक ऐसा मंच निर्मित करते हैं जहाँ अपने-पराए का भेदभाव ही मिट जाता है, जैसे उन्होंने रामचरितमानस में ब्राह्मण कुलोत्पन्न गुरु वशिष्ठ को शूद्रकुल में उत्पन्न निषादराज से भेंट करते हुए दिखाकर ब्राह्मण एवं शूद्र के मध्य समन्वय का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार राम और निषादराज तथा भरत और निषादराज की भेंट भी समन्वय का उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत करती है

"करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।

मनहँ लखन सब भेंट भइ प्रेम न हृदयँ समाइ।।"

समन्वय की विचारधारा को सशक्त बनाने के लिए तुलसी ने अपने युग, परिस्थितियों का गंभीर अध्ययन और विवेचन किया होगा, तभी तो जो धर्म के नाम पर अनेक सम्प्रदायों में आडम्बर, अनाचार, जटिलता, पुरोहितवाद जैसी कुरीतियाँ पनप रही थी वहाँ भी तुलसी ने इस विषमता को समाप्त करने के लिये समन्वय का मार्ग अपनाया। उन्होंने शिव के मुख से **'सोइ सैम इष्टदेव रघुनीरा सेवत जाति सदा मुनिधीरा'** कहलवाकर शिव को राम का उपासक घोषित किया तो राम के मुख से-

"संकर प्रिय मन द्रोही सिव द्रोही मम दास।

ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ वास॥"

1. वैष्णव और शाक्त का समन्वय:

शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के समान उस युग में वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायों में भी पारस्परिक वैमनस्य पनप चुका था। वैष्णव विष्णु के उपासक थे और शाक्त शक्ति के तथा ये दोनों भी निरन्तर संघर्षरत रहते थे। तुलसी ने इस संघर्ष को समाप्त करने के लिए तथा उक्त दोनों सम्प्रदायों में सामंजस्य स्थापित करने के लिये सीता को शक्तिस्वरूपा बताया और उन्हें ब्रह्म की शक्ति कहते हुए **'उद्गावस्थिति संहारकारिणी क्लेशहारिणी सर्वश्रेयस्करी'** कहकर शक्ति की उपासना की।

2. सगुण और निर्गुण का समन्वय:

तुलसी की धार्मिक समन्वय की दृष्टि हमें सगुण और निर्गुण भक्ति धाराओं के समन्वय में भी देखने को मिलती है। तुलसी के अवतरण से पहले ही भक्तिमार्ग सगुण और निर्गुण भक्तिधाराओं में विभक्त हो चुका था तथा इनके समर्थकों के बीच निरंतर आपसी संघर्ष चलता रहता था। इस द्वेष से प्रभावित होकर सूरदास ने 'भ्रमरगीत' में निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन किया था। तुलसीदास इन विषमताओं को समाप्त करने के लिए संकल्पित थे, इसलिये उन्होंने सगुण और निर्गुण भक्तिधाराओं के बीच भी समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने आराध्य श्रीराम को सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में देखा तथा उपासना की। इस प्रकार राजा का प्रजा के प्रति जो दृष्टिकोण था, उसे तुलसी ने परिवर्तित काट दिया। उन्होंने दोनों के कर्तव्यों का निर्धारण करके समन्वय स्थापित किया। इसी प्रकार उन्होंने श्रीराम के परिवार के माध्यम से

3. राजा और प्रजा का पारिवारिक समन्वय:

का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया है। उन्होंने पिता और पुत्र, पति और पत्नी, सास और पुत्रवधु, भाई-भाई, स्वामी और सेवक तथा पत्नी और सपत्नी के मध्य समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है। तुलसी के राम जितने पितृभक्त थे, उतने ही मातृभक्त भी थे तथा माता-पिता भी राम के प्रति वैसी ही भक्ति रखते थे। इसी प्रकार वधुएँ जितना सम्मान अपनी सासों का करती थी, उतना ही स्नेह उन्हें प्रतिदानस्वरूप प्राप्त भी होता था।

तुलसीदास जी ने अपने युग की राजनीतिक विश्रंखलता को गहराई से अनुभव किया था। उन्होंने महसूस किया कि राजा संकीर्ण विचारधारा से युक्त और आत्मकेंद्रित होते जा रहे हैं। प्रजा के कल्याण की ओर उनका तनिक भी ध्यान नहीं है। राजा और प्रजा के बीच गहरी खाई बनती जा रही है जबकि राजा और प्रजा से कहीं अधिक श्रेष्ठ, उन्नत और महान समझा जाता था वह ईश्वर का प्रतिनिधि भी था।

तुलसी ने यहाँ तक कहा कि जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी होती है वह राजा निश्चित रूप से नरक का अधिकारी होता है-

"जासु राज प्रिय राजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।"

4. दार्शनिक विचारधाराओं के बीच समन्वयः

दार्शनिक मत-मतान्तरों के मध्य व्याप्त द्वेष को समाप्त करने के लिए तुलसी ने इनके मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। उन्हींने द्वैत-अद्वैत, विद्या-अविद्या, माया और प्रकृति, जगतसत्य और असत्य, जीव का भेद अभेद, भाग्य एवं पुरुषार्थ तथा जीवनमुक्ति एवं विदेहमुक्ति जैसी दार्शनिक विचारधाराओं के बीच समन्वय स्थापित किया। अतः उस समय धर्म की आड़ में ही सामाजिक शोषण और सामाजिक सुधार होता था। तुलसी के दार्शनिक समन्वय को स्पष्ट करते हुए शिवदान सिंह चौहान कहते हैं- "तुलसीदास के दार्शनिक समन्वय को देखते हुए यह नहीं भूल जाना चाहिये कि तुलसी लोकमर्यादा, वर्ण-व्यवस्था, सदाचार-व्यवस्था और श्रुति-सम्मत होने का ध्यान सदा रखते हैं। चाहे वह राम की भक्ति का प्रतिपादन करे , चाहे अद्वैतवाद का, चाहे माया का निरूपण करे या जीवन का विवेचन, चाहे शिव की वंदना करे या राम की, किन्तु वह अपनी इन बातों को किसी न किसी रूप में याद रखते हैं इसलिए तुलसी के समकालीन परिवेश में मुक्ति-प्राप्ति के दो मार्ग प्रचलित थे- ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग। ज्ञानमार्ग के समर्थक ज्ञान को मुक्ति प्राप्त करने का उत्कृष्ट साधन मानते थे और भक्तिमार्ग के समर्थक इस दृष्टि से भक्ति को अधिक महत्व प्रदान करते थे। दोनों में अपने-अपने मत की उत्कृष्टता को लेकर पर्याप्त विवाद चलता रहता था। तुलसी ने अपने साहित्य के माध्यम से इस विवाद को समाप्त करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने अपने काव्य में जहाँ एक ओर ज्ञान को सृष्टि का सर्वाधिक दुर्लभ तत्व घोषित किया- 'हरि को भजे सो हरि को होई' और 'सियाराममय सब जग जानी' की समता पर आधारित भक्ति का वर्णन करते हुए भी शूद्र और ब्राह्मण के भेद को स्वीकार करते हैं।"

5, भक्ति और ज्ञान का समन्वयः

ज्ञान की श्रेष्ठता का भी प्रतिपादन किया है क्योंकि ज्ञान से ही चित्त रूपी दीपक प्रज्ज्वलित होता है। इस प्रकार तुलसी ने भक्ति ज्ञान के मध्य अद्भुत समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। यद्यपि तुलसी ने 'ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका' तथा 'ग्यान का पंथ कृपान की धारा' कहकर जनमानस को ज्ञान-मार्ग की कठिनाइयों से भी अवगत कराने का प्रयास किया तथा 'भक्ति सुतन्त्र सकल सुख खानी' कहकर भक्ति को ज्ञान की उपेक्षा अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास किया। “

भगतिहि ग्यानहि नहि कछु भेदा।
उभय हरहि भव संभव खेदा।।“

6. साहित्य के क्षेत्र में समन्वयः

तुलसीदास की समन्वयकारिणी प्रतिभा से साहित्य भी अछूता नहीं रहा। उन्होंने अपनी साहित्य-साधना किसी एक प्रचलित शैली में नहीं की, बल्कि उस समय प्रचलित सभी काव्य-शैलियों को अपनाकर साहित्यिक समन्वय का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रबन्ध, मुक्तक और गीति आदि सभी काव्य शैलियों को अपनाया। उनका 'रामचरितमानस' यदि श्रेष्ठ महाकाव्य है तो 'विनयपत्रिका' एक श्रेष्ठ मुक्तक रचना है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित ब्रज, अवधी और संस्कृत भाषाओं का समन्वय अपने काव्य में इतनी सुंदर शैली में किया है कि वह न तो उनकी कृतियों के प्रवाह में बाधक बना और न भाषिक-श्रृंगार का घातक ही। अवधी में 'रामचरितमानस' उनकी साहित्यिक प्रतिभा की पराकाष्ठा है तो ब्रज में 'गीतावली', 'दोहावली' उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। रामचरितमानस में उन्होंने इतने रचनात्मक कौशल के साथ संस्कृत और अवधी भाषाओं में सामंजस्य स्थापित किया है कि देखते ही बनता है-

जय राम रमा रामरमनं समनं।
भवताप भयाकुल पाहि जनं।।

7. भाषा के क्षेत्र में समन्वय:

उनके काव्य में जहाँ एक ओर भाषा का साहित्यिक सौंदर्य दृष्टिगत होता है, वही दूसरी ओर जनभाषा का भी अत्यंत सरस रूप दिखाई देता है। तुलसी पूर्णतया समन्वयवादी थे इसलिये उन्होंने अपने समय की तथा पूर्व प्रचलित सभ्य काव्य पद्धतियों को राममय करने का सफल प्रयास किया। सूफियों की दोहा-चौपाई पद्धति, चन्द के छप्पय और तोमर आदि, कबीर के दोहे और पद, रहीम के बरवै, गंग आदि की कवित्त-सवैया पद्धति एवं मंगल काव्यों की पद्धति को ही नहीं, वरन् जनता में प्रचलित सोहर, नरछू, गीत आदि तक को उन्होंने रामकाव्यमय कर दिया। इस प्रकार उन्होंने काव्य की प्रबंध एवं मुक्तक दोनो शैलियों को अपनाया। उन्होंने तत्कालीन कृष्णकाव्य की ब्रजभाषा और प्रेमकाव्यो की अवधी भाषा दोनो का प्रयोग करके समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

तुलसी ने तत्कालीन संस्कृतियों, जातियों, धर्मावलंबियों के बीच समन्वय स्थापित करके दिशाहीन समाज को नई दिशा प्रदान की। समन्वय का यह भाव उनकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति में भी झलकता है कवि की भाषा की सहजता, सरलता और उत्कट सम्प्रेषणीयता मानवमूल्यों को जोड़ती है। तुलसी के काव्य में संस्कृत, अवधी, ब्रजभाषा आदि भाषाओ का सुंदर सामंजस्य मिलता है। लोक ब्रह्म तुलसी ने भारतीय जनता की नस-नस को पहचान कर ही 'रामचरितमानस' के द्वारा समन्वयवाद का अद्भुत आदर्श प्रस्तुत किया। वैसे तो हमारी भारतीय संस्कृति में सब्र और समन्वय का भाव पहले भी था और आज भी है किन्तु आज भोग की प्रवृत्ति प्रधान हो रही है। इस प्रकार की विषम परिस्थिति में तुलसी की लोकपरक दृष्टि एवं समन्वयवादी विचारधारा ही मानवजाति को मानसिक एवं आत्मिक शक्ति प्रदान कर सकती है।